

इस अंक में

इस अंक में सुश्री अमिता शर्मा का लेख 'शिक्षा की धारणा : ज्ञान मीमांसीय द्रन्द्र और शैक्षणिक सुधार' छप रहा है। इसके प्रकाशन में काफी विलम्ब हुआ है। यह लेख अनुवाद और संपादन की दीर्घकालिक प्रक्रिया से गुजरा है। 'शिक्षा-विमर्श' में आरंभ से ही शैक्षिक दर्शन और चिन्तनपरक लेखों को प्राथमिकता दी गयी है। किन्तु हिन्दी की त्रासदी यह है कि इसमें सामाजिक विज्ञानों की तरह शिक्षा पर भी गंभीर लेख मूल रूप में नहीं लिखे जाते हैं। इस स्थिति में अनुवाद हमारी विवशता है। ऐसे लेखों का अनुवाद भी एक चुनौती भरा काम है। अनुवाद में मूल लेख की अन्तर्वस्तु को यथातथ्य रखते हुए उसकी पठनीय प्रस्तुति द्वारा हमने इस चुनौती का निर्वाह करने की कोशिश की है। पत्रिका प्रकाशन में व्यतिक्रम का एक कारण यह भी है।

बहरहाल, उक्त लेख ज्ञान-मीमांसा की दो धारणाओं के द्रन्द्र को प्रस्तुत करता है जो ज्ञान की संरचना, अर्थ एवं सत्य को परिभाषित करती हैं। पहली, प्रत्यक्षवादी (पॉजिटिविस्टस) धारणा यह मानती है कि वास्तविकता भौतिक है और वह जिन सिद्धांतों द्वारा संचालित होती है उसे मानव-मस्तिष्क द्वारा जाना जा सकता है। विवेक इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य तथ्यों पर आधारित होता है एवं मस्तिष्क संवेदी तंत्रिकाओं का क्रियात्मक सम्मिश्रण है। तथ्य वे हैं जो जाने एवं अनुभव से सत्यापित किये जा सकते हैं। जो अनुभव से सत्यापित या सार्वभौमिक सत्य के रूप में व्यक्त नहीं किये जा सकते, वे न तो सत्य हैं न ही तथ्य। ज्ञानमीमांसा की दूसरी धारा, बुद्धिवादी-उदारवादी दृष्टि मानव-मस्तिष्क के सहज रचनात्मक सिद्धांत पर बल देती है। ज्ञान इन्द्रिय-बोध के आधार पर अर्जित तथ्यों, सहज रचनात्मकता तथा सूझबूझ की क्षमता से निर्मित होता है। इस क्षमता के कारण ही मनुष्य अपने प्रत्यक्ष बोध को ज्ञान के रूप में परिवर्तित कर पाता है। लेख में कहा गया है कि उपनिवेशवाद प्रत्यक्षवादी ज्ञान-पद्धति की अनिवार्य अभिव्यक्ति है। यह क्षेत्र एवं मानव संसाधन दोनों के ही उपनिवेशीकरण के संदर्भ में कहा जा सकता है जैसे लोग भी जो राजनीतिक उपनिवेशीकरण का विरोध करते हैं, वे भी एक विचार को, एक नियम या सामान्य इच्छित व्यवहार के रूप को निरपेक्ष रूप से स्थापित कर, कुछ को नियंत्रणकर्ता एवं कुछ को उस नियंत्रण के अधीन बनाने के प्रयास में, स्वयं मानसिक रूप से उपनिवेशवादी हो सकते हैं।

शिक्षा-तंत्र से हम क्या पाते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षा को कैसे परिभाषित किया गया है। प्रस्तुत लेख में यह विस्तार से विश्लेषित किया गया है कि अलग-अलग मीमांसीय ढांचे, शिक्षा की अन्तर्वस्तु, शिक्षा की संरचना एवं सीखने के तरीके को, सीखने वाले के जीवन से संबंध को, अलग-अलग तरह से निर्धारित करते हैं। यद्यपि अधिकांश शिक्षण-तंत्रों में प्रयोग में लायी जाने वाली भाषा एक ही होती है परन्तु उस भाषा की व्याख्या और समझ, उपरोक्त दोनों ज्ञान मीमांसाओं में कौन-सा दृष्टिकोण शिक्षा पद्धति में अन्तर्निहित है, पर निर्भर करती है। औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसा उत्तरी भारत के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में सुस्पष्ट रूप में दीखती है। इसलिए यह ज्ञानमीमांसा सबसे हावी पद्धति के रूप में ख्यात है। बुद्धिवादी-उदारवादी दृष्टिकोण नवाचारी शैक्षिक पहलों में दिखायी देता है, जो प्रायः सरकारी दायरे से बाहर हैं एवं वैकल्पिक शिक्षा के रूप में पहचानी जाने लगी हैं।

रिचर्ड, आर. स्केम्प का लेख मूलतः गणितीय अवधारणाओं के बारे में है। लेकिन इससे सामान्य अवधारणाओं की निर्माण-प्रक्रिया व सीखने में इनकी महत्ता के बारे में भी जाना जा सकता है।

स्केम्प बताते हैं कि भाषा का अवधारणाएं बनने की प्रक्रिया में बहुत योगदान होता है। नयी अवधारणा बनाने के लिए भाषा के माध्यम से पुरानी अवधारणाओं का सार्थक उपयोग हो सकता है। इस तरह नयी अवधारणा बनाने की प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है। स्केम्प का कहना है कि गणित अपने परिवेश से सीधे नहीं सीखी जा सकती। यह गणित जानने वालों से अपनी स्वयं की चिन्तन क्षमता के आधार मात्र पर ही सीखी जा सकती है। सर्वश्रेष्ठ स्थिति में भी वह बात सीखने वालों को दूसरों (शिक्षकों एवं गणित की पुस्तकें लिखने वालों) पर निर्भर बना देती है। और खराब स्थिति में तो वे गणित से भय एवं इसको नापसंद करना भी सीख सकते हैं। गणित सीखने के मूल सिद्धांत सीधे-सीधे से ही हैं। पर इन्हे जाने की जरूरत सीखने वालों को कम और सिखाने वाले को अधिक है। और हालांकि वे सिद्धांत स्वयं में बहुत सरल हैं पर उन्हें लागू करने के लिए बहुत विचार करने की आवश्यकता होती है।

सुरेश पंडित ने अपने लेख में इस पर विचार किया है कि मिशनरी शिक्षा का चरित्र कितना मिशनरी या कितना औपनिवेशिक था। उनके अनुसार मिशन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाएं क्रिश्चियन-उद्यम का ही एक हिस्सा थीं इसलिए उनकी हकीकत यह थी कि अपनी विषयवस्तु में आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी उनकी ईसाइयत की छाप को हर कोई देख सकता था। अपने चर्चों के जरिये वे अपने उद्देश्यों को जन-साधारण तक पहुंचा रहे थे। स्कूल उनके काम में एजेन्ट की भूमिका निभा रहे थे। यदि मिशन अपने परंपरागत स्वरूप में ही यह काम करते तो वे असांप्रदायिक नहीं दिखायी दे सकते थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा को माध्यम बनाया और धर्म निरपेक्षता को आगे रखा। इस शिक्षा ने औपचारिक व्यवस्था को मजबूत करने में मदद की और सरकार की शिक्षा नीति का कभी अतिक्रमण नहीं किया।

लेख में कहा गया है कि मिशनरी शिक्षा का भारतीय इतिहास इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि लोगों को ईसाई बनाने के अपने मूल उद्देश्य में यह बहुत अधिक सफल नहीं हुई। हां, ईसाइयों को शिक्षित बनाने में इसने अवश्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसकी शिक्षण संस्थायें अपने अनुशासन, विशिष्ट आचरण और उत्कृष्ट शिक्षण की वजह से सम्मानीय तो अवश्य बनी रहीं किन्तु उन्होंने अपने छात्रों में एक ऐसी उच्चता ग्रन्थि विकसित की जिससे वे राष्ट्रवादी तो बने ही नहीं, आम लोगों में घुलमिल कर रहने से भी उन्होंने परहेज किया। अपने अंग्रेजी माध्यम और पश्चिमी आचार-विचार के कारण ये संस्थाएं ब्रिटिश हुकूमत की आंखों का तारा तो बनी ही रहीं, आजादी के बाद भी यथास्थिति की पोषक होने के कारण राष्ट्रीय सरकारों ने इनमें किसी तरह का बदलाव लाने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की।

इस अंक में कालूलाल श्रीमाली की 1951 में प्रकाशित पुस्तक 'शिक्षा और लोकतंत्र' की चर्चा है। इसे उदयपुर की विद्याभवन सोसायटी ने छापा था। पुस्तक की प्रस्तावना में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के तत्कालीन वाइस चान्सलर आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है "शिक्षा प्रणाली के गठन में इसका भी ध्यान रखना होगा कि उसके द्वारा वर्तमान युग में नवीन सामाजिक मूल्यों की पुष्टि करें।" मात्र 135 पृष्ठ की इस पुस्तक के माध्यम से हम देख सकते हैं कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारत में शिक्षा क्षेत्र के लोगों की चिन्ताएं क्या थीं, नये भारत के निर्माण में वे शिक्षा से क्या अपेक्षायें रखते थे और किस प्रकार की शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना लेकर चल रहे थे। अंक में बीच में स्कूल छोड़ने वाली एक बालिका नसीमन बानो से बातचीत है, इसमें उसकी पढ़ने की दमित आकांक्षा के साथ वे हालात संकेतित हैं जिन्होंने उसे पढ़ाई बीच में छोड़ने पर मजबूर कर दिया। स्कूलों में लैंगिक-भेद पर शारदा कुमारी की अनुभवपरक टिप्पणी है। एक अन्य टिप्पणी में मनोहर बिल्लौर ने मध्य प्रदेश के अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की मनःस्थिति को बयान किया है।

अजंता देव की कविता अनाथ बच्चों के पक्ष में एक काव्यात्मक मार्मिक अपील है। ♦